भाषा विज्ञान और भाषा शिक्षण

प्रो. रमाकान्त अग्निहोत्री

यह बातचीत भाषा संबंधी सहज जिज्ञासाओं को लेकर है। एक शिक्षक का भाषा को समझने का नजरिया क्या हो ? बच्चों की भाषाई क्षमता को कैसे समझा जाए ? बच्चों को कारगर ढंग से भाषा सीखने में कैसे मदद की जाए ? बच्चे के भाषा सीखने एवं ज्ञानलब्धि में क्या संबंध है ? इसी प्रकार की समस्याओं पर यह चर्चा केन्द्रित है।

प्रो. रमाकान्त अग्निहोत्री से विश्वंभर की बातचीत

प्रश्नः इस साक्षात्कार के पीछे भाषा संबंधी सहज जिज्ञासाएं हैं। भाषा के बारे में भाषा विज्ञान की आधुनिक समझ क्या कहती है? इंसानी भाषा को कैसे समझा जाए? भाषा एवं बोलियों के संबंध को कैसे समझा जाए?

उत्तरः भाषा संबंधी सवालों पर चर्चा करने के लिए यह समझना जरूरी है कि हम भाषा किसको कहें या भाषा की हम क्या परिभाषा मानें? भाषा के बहुत से सवाल इस बात से जुड़े हुए हैं और बात यहीं से शुरू होती है। मुझे लगता है कि भाषा की परिभाषा को लेकर बहुत से दुराग्रह हम सब लोगों के मन में हैं और यह एक स्वभाविक बात है। इसलिए स्वभाविक बात है कि भाषा कोई विज्ञान की जैसी चीज तो है नहीं, जिसका हम पेड़-पौधों, पत्थरों, या लकड़ी की तरह अध्ययन कर सकें। भाषा का हम रोज इस्तेमाल करते हैं और हम सबको लगता है कि हमें आती है। बड़े से बड़े भाषा वैज्ञानिक भी इसी तरह के दुराग्रहों से ग्रस्त रहते हैं। एक दृष्टिकोण से मुझे लगता है कि भाषा विज्ञान की जो मुख्य विचारधारा है, जो पाणिनी से आज तक चली आ रही है, वो मुख्य विचारधारा स्वयं समस्या का हिस्सा है। भाषा विज्ञान का काम तो यह होना चाहिए था कि उस समस्या से हमें बाहर निकाले। ऐसा नहीं है कि उसने हमें बाहर नहीं निकाला, काफी हद तक निकाला है, लेकिन यह कहना भी सही होगा जैसा कि अमेरिकन इंग्लिश में कहते हैं कि इट्स ए पार्ट ऑफ दि प्रोब्लम; कि वो एक समस्या का हिस्सा भी है। अर्थात् भाषा वैज्ञानिकों का इस समस्या को बनाए रखने में एक योगदान है। यह भी बहुत बड़ा योगदान है कि उन्होंने हम सबको भाषा समझने में मदद की। और ये भी एक योगदान है, इसे योगदान कहेंगे या किसी और तरह का दान कहेंगे, कि हमारे मस्तिष्क में भाषा को लेकर जो जाले लगे हुए होते हैं उन्हें काफी बढ़ा दिया है।

इस संदर्भ में एक तो आम आदमी की विचारधारा है। आम आदमी की विचारधारा यह होती है कि एक भाषा शुद्ध, मानकीकृत, व्याकरणयुक्त, साफ-सुथरी और सुलझी हुई होती है और एक बोली या उपभाषा होती है जो कि देहाती और जो गंवारू होती है। ये आमतौर पर लोगों के मन में भ्रांतियां रहती हैं। जैसा कि आपने एक सवाल भी उठाया है ये सामाजिक सत्ता से जुड़ी रहती हैं। अक्सर आपने ये देखा होगा कि जिन आदमियों के पास सामाजिक सत्ता और राजनैतिक सत्ता होती है, खासकर जो

लेखक परिचय :

डी. फिल., भाषा विज्ञान : प्रोसेसेज ऑफ असिमिलेशन : ए सोशियोलिंगविस्टिक स्टेडी ऑफ सिक्ख चिल्ड्रन इन लीड्स (यार्क, यू.के.) , सीनियर प्रोफेसर भाषा विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, एनसीईआरटी के भारतीय भाषाओं के शिक्षण पर बने राष्ट्रीय फोकस समूह के अध्यक्ष, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में शोध लेख प्रकाशित एवं संपादन से संबद्ध

सम्पर्क :

81, बी . एसी-II,
शालीमार बाग, दिल्ली 110032

शैक्षिक माध्यम से मिली हुई सत्ता है, उनकी भाषा को शुद्ध भाषा माना जाता है। आप कह सकते हैं कि हमारे राजनैतिक नेता तो ऐसी शुद्ध हिन्दी नहीं बोलते हैं जैसी बोलनी चाहिए लेकिन सवाल वो नहीं है, सवाल यह है कि शैक्षिक माध्यम से मिली हुई शिक्षा और उस शिक्षा के बाद उत्पादन के सारे स्रोतों और बाजार की आर्थिक व्यवस्था में जिनके पास सत्ता है, जो अच्छे स्कूलों, अच्छी यूनिवर्सिटीज में जा सकते हैं, जो सेंट स्टीफन में जाते हैं वो कहते हैं कि हम सेंट स्टीफन में पढ़े हैं। मिरांडा में लड़कियां जाती हैं, कहती हैं कि हम मिरांडा में पढ़े हैं, ये सत्ता है, इसका नाम सत्ता है। उन लोगों की भाषा भी अच्छी मानी जाती है, वही शुद्ध भाषा मानी जाती है। बाकी भाषाओं और बोलियों का विश्लेषण या मापन जिन आधारों पर होता है उसका पैमाना इन्हीं तथाकथित शुद्ध भाषा को आधार मानकर ही तय किया जाता है। इस भ्रम को तोड़ने में भाषा विज्ञान ने हमारी बहुत मदद की है। इसके लिए तो हम पाणिनी से लेकर चॉम्स्की तक, जितने भी बड़े-बड़े भाषा वैज्ञानिक आज तक हुए हैं उनके हम आभारी हैं।

मुझे लगता है कि भाषा विज्ञान का सबसे बड़ा योगदान एक आम सामाजिक प्राणी, एक अध्यापक और मां-बाप के लिए यह रहा है कि उन्होंने बार-बार, अलग-अलग तरह से ये करके दिखला दिया कि, हर भाषा, हर बोली, हर तरह की उपभाषा संरचनात्मक दृष्टि से बराबर होती है। कोई ऐसा काम नहीं है जो आप फ्रेंच में कर सकें और भोजपुरी में न कर सकें। एक मशहूर कहावत है कि लोगों ने कहा कि हम मैथिली में फिजिक्स कैसे पढ़ाएंगे, मैथिली तो उपयुक्त नहीं है। इसका जवाब लोगों ने यह दिया कि इसका मतलब यह नहीं है कि आपको मैथिली में समस्या है। इसका मतलब है कि आपको फिजिक्स नहीं आती है। अगर आपको फिजिक्स आती है तो फिर आप उसको किसी भी भाषा में पढ़ा सकते हैं। और ये भी एक दुराग्रह लोगों का होता है जैसे कि मैंने पहले भी बताया कि पहले भाषा को विकसित करो फिर हम उसका शिक्षा में प्रयोग करेंगे। है ठीक इसका उल्टा कि आप पहले भाषा का शिक्षा में प्रयोग कीजिए फिर उससे वो अपने आप विकसित होगी। यही हर भाषा की ऐतिहासिक कहानी है, लेकिन लोग इसको मानने को तैयार नहीं हैं। वो कुछ भाषाओं को आदिवासियों की भाषा या बोलियों को नाम देंगे। इस तरह के नाम दे देकर उनको निरन्तर छोटा दिखाया जाता है और यह दिखाया जाता है कि इसमें तो यह संभव ही नहीं, इसमें तो गणित संभव ही नहीं है। अरे ! अगर आप उस भाषा में गणित करोगे ही नहीं तो उसमें गणित कैसे संभव है। यह भाषा विज्ञान का एक सार्थक योगदान हमारे ज्ञान के लिए रहा है कि उन्होंने यह दिखाया कि ध्वनि संरचना, शब्द संरचना, वाक्य संरचना और संवाद की संरचना के आधार पर, यदि आप सही मायने में विश्लेषण करें तो, आपको यह समझ में आ जाएगा कि सब भाषाओं की व्यवस्थाएं और हर भाषा की बराबर ढंग से, एक ही तरह से नहीं अलग-अलग ढंग से, लेकिन होती नियमबद्ध है। और जो आधुनिक भाषा विज्ञान है उन्होंने तो यह भी करके दिखा दिया कि कई ऐसे सार्वभौमिक नियम हैं जो हर भाषा के बारे में सच हैं, उसके बिना भाषा संभव ही नहीं है। लेकिन इसके साथ-साथ मुझे लगता है कि एक जो दुराग्रह भाषा विज्ञान का रहा वह विज्ञान के नाम में है कि भई यह तो विज्ञान है और इसको विज्ञान की तरह ही, और इसका फायदा भी हुआ जैसा कि मैंने आपको बताया, भाषा का अध्ययन करने के लिए उनको भाषा को समाज से काटना पड़ा। भाषा को उसके संदर्भ से अलग करना पड़ा। अगर आपको पेड़-पौधों का अध्ययन करना है तो आप जंगल में जाकर तो नहीं कर सकते न। अगर आप पेड़-पौधों का अध्ययन करना चाहते हैं तो कुछ पौधों को चुनकर लैब में लाना पड़ता है। आप अलग-अलग आदमियों को देखकर तो आदमियों का अध्ययन नहीं कर सकते। आपको तो कुछ और करना पड़ता है, अगर आपको वैज्ञानिक तरीके से काम करना है तो आपको अलग-अलग किस्म के प्रयोग करने पड़ेंगे। उसी तरह के आधार मानते हुए भाषा वैज्ञानिकों ने कहा कि भई ठीक है ये जो लोग बोलते हैं, जो बातचीत करते हैं उससे हमें मतलब नहीं है। हमें तो उस व्यवस्था से, उस मानसिक व्यवस्था से मतलब है, जिससे कि बोलचाल संभव होती है क्योंकि बोलचाल में तो आपको बोलते-बोलते छींक आ गई या कोई बात भूल गए या आपका बीच में टेलिफोन आ गया तो गड़बड़ हो गई न, व्यवस्था मेरे हाथ से छूट गई। तो भाषा वैज्ञानिकों ने कहा कि यह तो नहीं चलेगा, अगर आपको भाषा का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करना है तब आपको भाषा को विसंदर्भित करना होगा। तब हम भाषा की परिभाषा यह मानेंगे कि वह व्यवस्था जो हमें शब्दों को एक व्याकरणिक तरीके से क्रमबद्ध करने की शक्ति देती है वह भाषा की व्यवस्था है। ये हुई भाषा की परिभाषा। एक भाषा वैज्ञानिक के लिए भाषा की परिभाषा केवल यही होती है कि, किन नियमों को लेकर हम ध्वनियों को इक्ट्ठा करते हैं और शब्द बनाते हैं। किन नियमों को लेकर हम शब्दों से दूसरे शब्द बनाते हैं और फिर किन नियमों के आधार पर हम शब्दों से वाक्य बनाते हैं या कोई वाक्य का हमारे दिमाग में ब्ल्यू प्रिंट रहता है, हम उनमें शब्द भरते हैं फिर शब्दों में ध्वनियां भरते हैं। इस पर बहस चलती रहती है लेकिन ये एक व्यवस्थागत सवाल है। ये एक फॉर्म का सवाल है, ये अर्थ का और समाज का सवाल नहीं है, यह संदर्भ का सवाल नहीं है। तो ये भाषा विज्ञान में पाणिनी से लेकर अभी तक

चला आ रहा है। तभी आप देखेंगे कि पाणिनी की किताब में आपको केवल नियम मिलते हैं। अष्टाध्यायी बहुत ही छोटी-सी किताब है, बहुत लंबी चौड़ी किताब नहीं है। इसी तरह से जो अच्छी-अच्छी ग्रामर लिखी जाती हैं वो जितनी छोटी हों, जितनी संक्षिप्त हों उतनी ही अच्छी मानी जाती हैं। जो सबसे बड़े सिद्धांत भाषा विज्ञान के हैं वो अर्थव्यवस्था (इकॉनामी) और उत्कृष्टता (एलिगेंस) के माने जाते हैं, संक्षिप्त हों और देखने में स्पष्ट नियम हों। यह कहा जाता है कि, आप ऐसा नियम बताइए जो कि संपूर्ण भाषा को, जितने वाक्य आप बोल सकते हैं, उनका विश्लेषण कर सके और उनका विश्लेषण उनमें संदर्भित रहे और कोई भी ऐसा वाक्य जो व्याकरणयुक्त न हो उसको वह मान्य न करे। उदाहरण के लिए, यह नियम है कि अगर पुल्लिंग एक वचन कर्ता होगा तो आपको हिन्दी में क्रिया में 'ता' लगाना पड़ेगा। और राम होगा तो 'खाता' होगा। यह ऐसा नियम है कि आप इसको तोड़ नहीं सकते और इस नियम को आप 'राम खाती है' कहेंगे तो इस वाक्य को कम्प्यूटर अस्वीकृत कर देगा। जिसे रूपात्मक भाषा विज्ञान (फॉर्मल लिंग्विस्टिक्स) कहते हैं, जो एक गणितीय दृष्टि है, मुझे लगता है कि भाषा विज्ञान में भी यह गणितीय दृष्टि लोगों को मिलती है। एक आम समझ जो शुद्ध भाषा और बोली से प्रभावित है और जिसमें कि आप लोगों से पूछेंगे कि भाषा की क्या परिभाषा होती है? तो आमतौर पर कहा जाता है कि यह हमारी बातचीत का माध्यम होती है। ये एक आम परिभाषा है। यदि आप भाषा वैज्ञानिक से परिभाषा पूछेंगे तो वो कहेंगे कि नियमों की वो व्यवस्था जो हमें यह बताती है कि शब्दों को क्रम में कैसे रखा जाए, वो भाषा विज्ञान है।

अगर हम, जिस तरह के सवाल आपने खड़े किए हैं, उसमें भाषा को परिभाषित करने की कोशिश करें और जैसे मैं भाषा को परिभाषित करने की कोशिश करता हूं, वह इन दोनों से बिल्कुल अलग है। उसमें जो भाषा विज्ञान की देन है और मैं यह मानकर चलता हूं कि, हर व्यक्ति में भाषा सीखने की क्षमता होती है और हर व्यक्ति और समाज विशेष की भाषा एक स्तर पर बराबर होती है। इस स्तर पर बराबर होती है कि किसी भी 'एक्स' भाषा में जो संभव है वो 'वाई' भाषा में भी संभव है और इसके चलते मैं यह नहीं मानता कि भाषा और बोली में कोई भी अन्तर होता है। लेकिन मुझे यह लगता है कि भाषा वैज्ञानिकों ने जो परिभाषा की है, जो अधिकतर मान्य मूल विचारधारा है, उसमें भी हमें संशोधन करने की जरूरत है। उसको भी काफी लचीला बनाने की आवश्यकता है। नहीं तो भाषा में हमारी पकड़ नहीं बन सकेगी। इसके कई आयाम हैं, जिस परिभाषा की मैं बात कर रहा हूं। उसका एक आयाम है कि हम यह मानकर चलते हैं कि हर व्यक्ति में केवल भाषा सीखने की क्षमता नहीं होती है बल्कि एक बहुभाषिक क्षमता होती है और बहुभाषिता एक इंसान होने की पहचान है। पहले तो हम केवल यही कहते थे कि इंसान भाषा जानता है इसलिए वह बाकी प्राणियों से अलग है लेकिन मेरा अब यह मानना है कि इंसान अलग-अलग तरह से बहुभाषी है। अतः बहुभाषिता हमारी पहचान का हिस्सा है। एक तो यह मानते हैं कि हर इंसान अनेक भाषाएं सीख सकता है बल्कि अनेक भाषाएं वह पहले से ही जानता है। मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि इस बात के हमारे पास बहुत प्रमाण हैं कि अगर बच्चे को छः-सात साल की उम्र से पहले चार भाषाओं के पर्यावरण में रख दिया जाए तो वह चारों की चारों भाषाएं सीख जाएगा और सीख भी जाते हैं। इससे दो बातें तो सिद्ध हो गईं। एक तो यह कि, सीख सकते हैं। दूसरी ये कि अधिक भाषाओं में डूबने से बच्चे बीमार नहीं होते। ये मां-बाप की और अध्यापकों की बहुत बड़ी समस्या रहती है कि बहुत अधिक भाषाएं हो जाएंगी तो समस्या हो जाएगी। इस बात को ठीक से समझना होगा कि बच्चों को भाषा से कोई बीमारी नहीं लगती। तीसरी बात यह भी समझनी होगी, मेरे ख्याल से समझना बहुत जरूरी है कि, एक दूसरे की संगति में भाषाएं पिछड़ती नहीं हैं, पनपती हैं। और वास्तव में मिश्रित भाषा और खिचड़ी भाषा, जिसको की हम सदा निरादर की दृष्टि से देखते रहते हैं, मेरी परिभाषा के मुताबिक, और कोई भाषा होती ही नहीं है। भाषा मिश्रित ही होती है, हर भाषा खिचड़ी ही होती है और वही होने के कारण वह भाषा कहला सकती है। ये एक और आयाम है जो कि मुख्य विचारधारा में मान्य नहीं है। शुद्धता का ही आग्रह एक अलग ढंग से मुख्य विचारधारा में भी है। उसने एक तरफ तो उसे तोड़ा है लेकिन दूसरी तरफ उसे संजोए भी रखा है। भाषा विज्ञान की जो मुख्य विचारधारा है उसने इसे हिमालय पर्वत पर भी चढ़ाया है। मेरे ख्याल से भाषा की परिभाषा के ये आयाम हैं।

दो मुख्य आयाम ये हैं कि भाषा की बहुभाषिता और बहुभाषिता में विविधता और विविधता का सामाजिक रिश्ता। विविधता का जो सामाजिक रिश्ता है उसका सीधा संबंध भाषा के सीखने, भाषा के बदलने और संरचना से है। वो थोड़ा जटिल काम है। लेकिन आप इसको मोटे-मोटे ढंग से इस तरह से समझ सकते हैं कि एक तो आप में यह क्षमता है कि आप रोहित से कैसे बात करेंगे, मुझसे कैसे बात करेंगे और अपने किसी बहुत ही घनिष्ठ मित्र से कैसे बात करेंगे और अपने बच्चे से कैसे बात करेंगे और अपने घर में आई हुई नौकरानी से कैसे बात करेंगे। ये पूरे का पूरा रेंज आपके पास

है और उसमें बहुत विविधता रहती है और उसी विविधता के रहते भाषा बनती बिगड़ती है। दूसरा आयाम यह है कि उस विविधता में इतनी गहराई छिपी रहती है कि आप किसी आदमी के एक वाक्य बोलने से कहते हैं कि आप तो हरियाणा की तरफ के हैं, एक वाक्य से, और जैसे ही वह कहता है, हां, तो आप कहते हैं कि रोहतक के पास के लगते हो। यही नहीं आप थोड़ी देर बाद उसके गांव तक पहुंच जाते हैं, इतनी सामाजिक पहचान इंसान की भाषा में हर वक्त निहित रहती है। उसी के साथ सत्ता का सवाल जुड़ा हुआ है कि समाज में ये जो विविधता होगी, जो वैविध्य सत्ताधारियों की भाषा में होगा, उसका तो बहुत सत्कार होगा। लेकिन जो विविधता गरीब लोगों की भाषा में होगी उसका निरन्तर तिरस्कार होगा। ये हम कक्षा में रोज करते हैं। हमारी भाषा में भी विविधता है। हजारों किस्म की विविधता है। वो मान्य है, उसका सब आदर करते हैं लेकिन जो वैविध्य आपको बच्चों की भाषा में मिलता है। उसको आप कहते हैं कि इसको तो ठीक करना है। हमारी ध्वनियां, शब्द, वाक्य की संरचना बदल जाती है। उसी संदर्भ में आप कहीं तो अपने आप को 'मैं' कहते हैं, कहीं 'आप' और कहीं 'हम' कहते हैं। हमारी पत्नी जब नौकरानी से बात करती है तब अपने आपको 'हम' कहती है, वैसे वो कभी अपने आपको 'हम' नहीं कहती, ये एक आम बात है और बहुत लोग ऐसा करते हैं। रिक्शेवाले से जब हम बात करते हैं तब अपने आपको 'हम' कहते हैं, वैसे अपने आपको 'मैं' कहते हैं। इस सबके पीछे बड़ी राजनीति छुपी हुई है। ये सब मैं परिभाषा का हिस्सा मानता हूं। मुझे लगता है कि जब तक आप इस परिभाषा को एक विस्तृत ढंग से नहीं देखेंगे तब तक आप भाषा के सवाल को समझ नहीं सकते।

दूसरा है कि जिस तरह के भाषा के सामाजिक पक्ष हैं उसी तरह के मानसिक पक्ष हैं। मानसिक पक्षों में तीन बातें हैं। एक बात तो यह, मुझे लगता है कि चॉम्स्की को हम अभी तक नहीं झुठला पाए, उसके बारे में मैं दो बातें मानता हूं कि, उन्होंने यह दिखला दिया कि जब तक हम यह नहीं मानें कि बच्चे में भाषा सीखने की जन्मजात निहित क्षमता, अन्तर्निहित क्षमता, रहती है तब तक हम भाषा सीखने की समस्या का जवाब नहीं दे सकते। ये उन्होंने तार्किक ढंग से सिद्ध करके दिखा दिया और उसके बाद बहुत आंकड़ों से लोगों ने दिखाया है, आनुभविक रूप से और उससे यह बार-बार दिखाई देता है कि भई अन्तर्निहित क्षमता होनी चाहिए। जब हम इसे नहीं मानेंगे तब तक हम भाषा सीखने की समस्या का जवाब नहीं दे सकते। बहुभाषिता भी उसका एक जवाब है कि इतनी भाषाएं बच्चा सीख कैसे जाता है? लेकिन उस क्षमता को मानने के बाद और एक जिसको कि आप कहेंगे कि पहला कदम बच्चा भाषा की दुनिया में ले लेता है। उसका अर्थ यह हुआ कि बच्चा ढाई-तीन साल का हो गया और इस उम्र में भाषा का संरचनात्मक स्वरूप और भाषा का बुनियादी शब्दकोष उसके पास होता है। उसके बाद जितना विकास ज्ञान, समाज, गणित और इतिहास को लेकर होता है वो सामाजिक होता है, सामाजीकरण से होता है और भाषा के माध्यम से होता है। जब तक आप भाषा के इन सारे-आयामों को दिमाग में नहीं रखेंगे तब तक आपके प्रश्नों पर तर्कपूर्ण और सार्थक चर्चा नहीं हो सकती।

प्रश्नः भाषा की क्षमता को जन्मजात क्षमता कहने के आधार क्या हैं? बहुत-सी क्षमताएं बच्चों में जन्मजात होती हैं। उनसे भाषा की क्षमता को अलग करने के आधार क्या हैं?

उत्तरः इसमें तो कोई शक नहीं है कि बहुत सारी और क्षमताएं जन्मजात होती हैं। उदाहरण के लिए जिसको हम जगह (स्पेस) की समझ कहते हैं वह जन्मजात होती है। एक बच्चे के लिए तो आकाश में और इस कमरे में कोई अन्तर नहीं होता, यह बच्चे को समझना पड़ता है कि वो इस कुर्सी के नीचे से निकल सकता है या नहीं। ये मैंने अपनी पोती को करते हुए देखा है वो बाहर घूम रही थी और वह इधर-उधर कुछ कर रही थी। उसको यह समझ आ गया कि इस कुर्सी से भी वो निकल सकती है। बहुत छोटी थी, एक-डेढ साल की, बच्ची ने यह फिगर आउट कर लिया, वो उस मेज के नीचे से नहीं निकली, इस कुर्सी के नीचे से निकल गई। तो यह भी समझ की बात है। बच्चों में कुछ न कुछ जगह की समझ जन्मजात होती है। संगीत को समझने की क्षमता जन्मजात होती है। कुछ लोग शायद जगह की समझ को गणित की समझ भी मानते हैं, मैं तो मानता हूं, रोहित भी मेरा ख्याल है माने, तो आपको मानना पड़ेगा कि गणित की क्षमता जन्मजात होती है। इस तरह की कई क्षमताएं जन्मजात होती हैं। और ये सारी चीजें आपको इसलिए भी माननी पड़ती हैं कि ये चीजें आपको हर समाज में मिलती हैं और हर समाज के दो-तीन साल के बच्चे ये कर लेते है, भाषा को लेकर एक समस्या है, जो कि चॉम्स्की का मुख्य बिन्दु है, वो यह है कि जगह की हमारी समझ बहुत मोटी-मोटी बनती है। जब बच्चे दो-ढाई साल कहते हैं, तीस महीने के होते हैं। जब हम तीस महीने कहते हैं इसका मतलब हुआ कि 15 महीने, क्योंकि 15 महीने तो बच्चा सोएगा बाकी 15 महीने जो बचे उसमें बच्चा 4-5 महीने खाएगा-पीएगा, कोई उसकी तरफ देखेगा नहीं, उसको कोई भाषा इनपुट नहीं मिलेगा। तो आठ दस महीने में ऐसा इनपुट, ऐसी भाषा उसको मिलती है। देखिए, यह बहुत ही नाजुक बिन्दु

है और मुझे लगता है बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, मान लीजिए कि, मेरी एक-डेढ़ साल की पोती यहां पर बैठी है। हम लोग जब बातचीत कर रहे हैं उसका उसके लिए क्या महत्त्व है। ठीक है उसके मन में कुछ ध्वनियां जाएंगी, कुछ रिदम जाएंगे, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उसका कोई योगदान नहीं है, जरूर होगा लेकिन आप उससे तो बात नहीं कर रहे हैं न, सीधा इनपुट उसको तो नहीं दे रहे हैं न, बहुत कम समय होता है जब बच्चों को वास्तव में ऐसा सार्थक इनपुट मिलता है जिसको हम कह सकें कि इसकी वजह से बच्चा भाषा सीख गया। चॉम्स्की का कहना यह था कि ढाई साल में बच्चे का जो आउटपुट हो जाता है, उसे इस इनपुट से आप नहीं समझ सकते। जबकि जगह की समझ को मैं इनपुट से समझ सकता हूं। क्योंकि मैंने अपने सामने देखा। चॉम्स्की ने यह कहा कि व्याकरण की जटिलता और विषमता और उन नियमों की गहराई में अगर जाएं तो आप हैरान हो जाते हैं कि एक बच्चे ने वो नियम कैसे पकड़े हैं ! कोई इंसान इस दुनिया में 'प' और 'ब' में अंतर नहीं बता सकता कि प और ब में क्या अन्तर है और अगर बता भी दे तो वह बच्चे को समझा नहीं सकता। बच्चा इस अन्तर को पकड़ लेता है। उदाहरण के लिए मैं आपको कहूं कि *'बॉयज आर प्लेइंग इन द ग्राउन्ड'*। इसका मुझे नकारात्मक (नहीं वाला) वाक्य बनाना है। यह बच्चा कैसे सीख जाता है? एक मिनट में इतने बड़े वाक्य में, इस वाक्य को आप कितना भी बड़ा कर लीजिए, *'बॉयज आर प्लेइंग इन द ग्राउण्ड इन शालीमार बाग इन देहली, विच इज इन इंडिया, विच इज इन नार्थ इंडिया, विच इज इन द वर्ल्ड, विच इज इन ए स्माल पार्ट आफ यूनिवर्स'*। ये वाक्य कभी नहीं खत्म होगा। यह भाषा की क्षमता है कि आप यहां से सूर्य तक का वाक्य लिख लीजिए तब भी वाक्य खत्म नहीं होगा क्योंकि 'एण्ड' ही तो लगाना है। लेकिन उस सारे एण्ड में इतना बड़ा वाक्य तो मान ही लेते हैं कि *'बॉयज आर प्लेइंग इन द ग्राउण्ड इन देहली एट फाईव पी.एम. इन द इवनिंग'*। इसमें 'नॉट' कहां आएगा। वो केवल एक जगह आ सकता है और यह नियम कि जो नॉट है या हिन्दी में जो 'नहीं' है, वही नियम हिन्दी में भी है, वो जहां पर आपकी सहायक क्रिया है उसी के साथ आएगा और कहीं नहीं जा सकता। *'बॉयज आर नॉट प्लेइंग इन द ग्राउण्ड'*। बच्चे बहुत बड़ी-बड़ी गलतियां करते हैं लेकिन ऐसी गलती करता हुआ कोई मेरे पास नहीं आया कि देखो जी ये तो ऐसी गलती करता है, *'बॉयज नॉट आर प्लेइंग इन द ग्राउण्ड'*। ये वाक्य आज तक किसी बच्चे ने नहीं बोला। क्यों नहीं बोला? क्योंकि इसलिए चॉम्स्की ने यह कहा बार-बार कि कोई न कोई ऐसी क्षमता होगी जो केवल भाषागत क्षमता है, कोई न कोई क्षमता अवश्य होनी चाहिए जो भाषागत हो। बाकी क्षमताएं भी हैं लेकिन उन क्षमताओं से अलग कुछ क्षमताएं हैं जो भाषागत हैं, बाकी क्षमताओं के बारे में हमें अभी इतने प्रमाण नहीं मिले। कल को मिल जाएंगे तो वे भी मानने पड़ेंगे। वैसे भी लोग *'नाइन इंटेलिजेंस'* और *'टेन इंटेलिजेंस'* की बात कर रहे हैं। देखिए, बच्चे के किसी भी ज्ञान के क्षेत्र का ऐसा विश्लेषण नहीं हुआ है जैसा कि भाषा का हुआ है। इसलिए भाषा के बारे में सोचा गया कि भाषा की कोई जन्मजात क्षमता होनी चाहिए।

प्रश्नः भाषा विज्ञान की हमारी समझ और बच्चे के भाषा शिक्षण के बीच क्या संबंध है? बच्चों के साथ शिक्षण में भाषा विज्ञान की यह समझ हमारी क्या मदद कर सकती है ?

उत्तरः मुझे लगता है कि बहुत-सी बातें तो मैंने आपको इसमें बता दीं लेकिन सवाल यह है कि भाषा शिक्षण, व्याकरण और भाषा विज्ञान में क्या संबंध है? ये काफी जटिल प्रश्न है और इसको लोग अलग-अलग ढंग से बार-बार उठाते हैं। इसका एक बहुत ही सीधा और सरल-सा जवाब तो चॉम्स्की ने दे दिया था। उन्होंने ये कहा कि देखिए, भाषा वैज्ञानिक का काम है भाषा की संरचना को समझना। बस। और मैं वही करता हूं। और बच्चा उस संरचना को खुद समझ लेता है, वह खुद एक भाषा वैज्ञानिक होता है। लेकिन स्कूल में भाषा पढ़ाना एक अलग बात है। उसमें अध्यापक है, कमरा है, समय है, किताब हैं, हजार किस्म के और बंधन हैं। उन्होंने कहा कि भाषा विज्ञान को भाषा शिक्षण के बारे में कुछ नहीं कहना है और न ही भाषा विज्ञान का भाषा शिक्षण से कोई खास लेना देना है। लेकिन मैं इस बात को सच नहीं मानता। क्योंकि आप हर रोज भाषा का अध्ययन कर रहे हैं तो आप ये कैसे कह सकते हैं कि आपको भाषा शिक्षण के बारे में कुछ नहीं कहना है। हां, इस दृष्टिकोण से बात बिल्कुल सही है कि मैं आपको कोई ऐसी पुड़िया या कोई ऐसा नियम या कोई ऐसा मैनुअल नहीं दे सकता जिसमें कि इस तरह की जड़ी-बूटियां हों कि जिसको आप दें और भाषा शिक्षण हो जाए। ये तो संभव नहीं है। लेकिन बच्चा भाषा कैसे सीखता है इससे कुछ सार जरूर निकाल सकते हैं। कुछ बातें साफ हैं। एक बात तो यह है कि बच्चों को व्याकरण पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम सदियों से उसे व्याकरण ही पढ़ाते रहते हैं, मुझे नहीं लगता कि इसका कोई फायदा होता है और मुझे नहीं लगता कि कोई व्याकरण सीख करके भाषा सीखता है या किसी अध्यापक को व्याकरण पढ़ाना होता है, इसे तो मैं बिल्कुल समय नष्ट करने वाली बात मानता हूं। इसलिए लगता है कि उसको तो निकाल ही देना चाहिए। मुझे लगता है कि वह एकदम गलत होता है और अक्सर भाषा विज्ञान की पूरी हमारी

समझ के विरूद्ध होता है, उसमें त्रुटियां होती हैं, उसमें वस्तुस्थिति और तथ्यों के स्तर पर बहुत गलत बातें होती हैं। भाषा शिक्षण के पूरे कार्यक्रम से जिस तरह का व्याकरण हम लोग पढ़ाते हैं, उसे निकाल देना चाहिए। लेकिन हमें भाषा शिक्षण के बारे में दो-तीन बातें पता है। एक तो यह बात हमें पता है कि बच्चों को जितना अधिक प्यार भरा और स्नेहभरा वातावरण और प्रोत्साहन दिया जाता है बच्चे की भाषा उतनी ही समृद्ध होती है। मुझे लगता है कि हमारे यहां अध्यापक का काम होता है सुनाना। अध्यापक को कहा जाता है कि वह पढ़ाने वाला है। मुझे लगता है कि इसकी परिभाषा बिल्कुल उल्टी होनी चाहिए। अध्यापक सुनने वाला होना चाहिए, अध्यापक सीखने वाला होना चाहिए, सिखाने वाला नहीं होना चाहिए। मुझे लगता है इस मानसिकता को बदलने की जरूरत है। मुझे लगता है कि भाषा शिक्षण का सबसे बड़ा, सबसे मुख्य अंग है बच्चों को बोलने, लिखने, सुनने के लिए प्रोत्साहित करना और उनकी बात सुनना। खुद सुनना और दूसरे बच्चों को सुनने देना। आप सोच नहीं सकते कि इसके जो असर और परिणाम हमें मिलते हैं वे कितने सुखद और कितने दूरगामी होते हैं, उन्हें आम आदमी सोच ही नहीं सकता। पूरी प्रक्रिया में आप बच्चों की आवाजों को सुनें चाहे वे किसी भी भाषा में हों। दूसरी बात जो हमें समझ में आती है कि बच्चे आगे-आगे, बहुत जल्दी ही भाषाएं सीख जाते हैं। इससे पहले एक बार फिर भाषा की परिभाषा पर वापस आना पड़ेगा। यह मानना कि भाषा का सीखना तीन वर्ष की उम्र में समाप्त हो जाता है, यह गलत है। भाषा का सीखना सारी उम्र चलता रहता है क्योंकि हमें रोज नए शब्द सीखने पड़ते हैं। हमारा शब्दकोष निरन्तर बड़ा होता रहता है और एक आधार पर तो यह किसी भी शब्दकोष से बड़ा होता है। हम दोनों के शब्दकोष में पचासों शब्द ऐसे होंगे जो किसी भी शब्दकोष में नहीं हैं। क्योंकि हम रोज नए शब्द बनाते हैं। और क्योंकि हमें रोज-रोज नए शब्द सीखने पड़ते हैं इसलिए हमें उनके नए-नए संदर्भ भी सीखने पड़ते हैं, अर्थ भी रोज उसके नए होते हैं क्योंकि नए संदर्भ बनते हैं इसलिए उनके अर्थ भी नए आ जाते हैं। कम्प्यूटर की सारी शब्दावली को देख लीजिए, फाइल, डीलिट, कॉपी, बैकअप, सीडी, डिस्क, मॉनीटर, सीपीयू, माउस इनमें आपको ऐसे हजारों शब्द मिल जाएंगे जिनमें से एक भी शब्द नया नहीं है। आपको एक-दो शब्द नए मिल जाएंगे, बाकी सब पुराने शब्दों को हमने नए मायने दे दिए हैं। पुराने शब्दों को नए मायने देने की जो प्रक्रिया है, उसका प्रयोग हम कभी कक्षा में करते ही नहीं हैं। इससे हम यह सीख सकते हैं कि व्याकरण पढ़ाना छोड़ो और नए-नए संदर्भों में नए-नए शब्द प्रयोग करने के मौके, अवसर कक्षा में पैदा करो। तब भाषा शिक्षण अधिक सार्थक होगा।

इसका तीसरा आयाम यह है, जो बाकी सारी संज्ञानात्मक शक्तियों से जुड़ा हुआ है, कि इस बात की जरूरत स्कूल में सदा रहती है कि बच्चे की संज्ञानात्मक शक्तियों को हम तराशते रहें, उनको निरन्तर तराशा जाए। हमारी विश्लेषणात्मक क्षमताएं हैं, उनमें जंग नहीं लगना चाहिए क्योंकि जिस दिन विश्लेषणात्मक क्षमताओं पर जंग लग गया उस दिन आप प्रश्न चिन्ह लगाना छोड़ देंगे और जिस दिन आपने प्रश्न चिह्न लगाना छोड़ दिया उस दिन ज्ञान का विकास होना बन्द हो जाएगा। मुझे यह लगता है कि भाषा का अलग-अलग तरह से विश्लेषण करना। बहुभाषिता आपके सामने कक्षा में बैठी है यदि उसका इस्तेमाल करते हुए भाषा का विश्लेषण करें जो आपकी विश्लेषणात्मक क्षमताओं को निरन्तर तेज करता रहता है। और आप में वह ताकत पैदा करता है कि आप इतिहास, सामाजिक विज्ञान, गणित, ज्योमैट्री को भी अधिक गहराई से परखते हैं। इसका हमारी कक्षाओं में बिल्कुल इस्तेमाल नहीं होता। मैंने बार-बार कहा है कि एक बहुभाषी कक्षा को हम किस तरह से एक स्रोत की तरह और एक लक्ष्य की तरह और एक पढ़ाने के तरीके की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं। बच्चे अलग-अलग भाषा बोलते हैं और व्यक्तिगत तौर पर बच्चे दो भाषी होते हैं और एक समूह के तौर पर भी दो भाषी होते हैं। अर्थात् एक तो मैं खुद दो भाषी हूं, इसकी तो हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं, दूसरा यह कि अलग-अलग बच्चे कक्षा में बैठे हैं तो आठ-दस भाषाएं कक्षा में होती हैं। रोहित इस बात को बिल्कुल नहीं मानते हैं। लेकिन वो इसलिए नहीं मानते हैं क्योंकि इसके ऊपर, राजस्थान जैसी जगह में, कभी शोध ही नहीं हुआ। जहां-जहां शोध हुए हैं जैसे अमेरिका में बहुत शोध हुए हैं या हिन्दी पट्टी में थोड़े बहुत शोध हुए हैं। इंडियन इंग्लिश में बहुत शोध हुआ है, वहां बार-बार यह करके दिखाया गया है। मेरा ख्याल है कि राजस्थान में जब तक आप 100 किलोमीटर तय कर लें एक जगह की भाषा दूसरी जगह समझ में नहीं आएगी और 100 किलोमीटर के बच्चे एक उच्च प्राथमिक स्कूल में इक्ट्ठे हो जाते हैं। वो आपस में बातचीत भी कर लेते हैं क्योंकि उनमें बहुभाषी क्षमता है कि वे अपनी बातचीत का माध्यम पैदा कर लेते हैं। जब चीनी और अंग्रेज समुद्र के ऊपर व्यापार करने के लिए मिले तो न तो चीनी को अंग्रेजी आती थी और न अंग्रेजों को चीनी आती थी। न पुर्तगालियों को हिन्दी आती थी, न हिन्दी वालों को पुर्तगाली आती थी। उन्होंने इकट्ठे मिलकर भाषा पैदा कर ली। कैसे हुआ यह? क्योंकि इंसानों में वो भाषाई क्षमता है जो एक भाषा के रहते दूसरी भाषा को अलग कर सकती है। तो व्याकरण को लेकर जो मेरा मानना है और भाषा की शुद्धता है, मैं यह नहीं कहता हूं कि बच्चे को आप मानकीकृत

भाषा से दूर रखें। क्योंकि मेरा यह मानना है कि यह अपनी तरह से सामाजिक भेदभाव और शोषण है। अगर आप उसको मानकीकृत भाषा से दूर रखें और उसकी भाषा को आप कहें कि बोली तो बहुत अच्छी है। इस तरह का रोमांस नहीं करना चाहिए और यदि आपको मानकीकृत भाषा सिखानी है तो जितना समय शुद्धता पर नष्ट करते हैं उतना समय वैसे संदर्भ पैदा करने में लगाएं जिसको कि आप खुद अच्छी मानकीकृत भाषा मानते हैं, जिसको कि आप अच्छी कविता, अच्छी कहानी, अच्छा लेख, अच्छा निबंध, अच्छा लिखा हुआ इतिहास मानते हैं। उस तरह की चीजें आप बच्चे के साथ करें, वो कभी नहीं करते हैं। कोई अध्यापक कभी यह नहीं करता है कि कोई लेख कक्षा में लेकर आए या बच्चों को कहे कि कोई कहानी अपने मां-बाप से सुनकर, जो तुम्हें अच्छी लगती है, कक्षा में सुनाओ। यह कक्षा में कोई नहीं करता। एक पाठ्यपुस्तक मिल जाती है उसको चाट जाते हैं और यही कहते रहते हैं कि हमें तो इसी पाठ्यपुस्तक को समझाना है, हमें तो यह पाठ्यपुस्तक खत्म करनी है। हमारे यहां पूरी शिक्षा व्यवस्था पाठ्यपुस्तक और परीक्षा में बंधी हुई है। इसको तोड़ना ही पड़ेगा और मुझे यह लगता है कि भाषा और बहुभाषिता उसको तोड़ने का एक सशक्त माध्यम है। अगर हम उसका सही प्रयोग करें।

प्रश्न : यदि इसको शिक्षक के लिहाज से समझना चाहें तो बच्चा मातृभाषा सीखकर स्कूल आता है और उसे मानक भाषा की ओर ले जाना होता है। मातृभाषा से मानक भाषा की तरफ संक्रमण एक समस्या होती है। यह कैसे बेहतर रूप में हो ?

उत्तरः चॉम्स्की या पाणिनी से जो चला आ रहा है और इन्होंने भाषा विज्ञान में ये योगदान कर दिया है कि, बच्चा *ए लेंग्वेज* के साथ नहीं आता है। मैंने नहीं देखा कि कोई तीन साल का बच्चा घर में आए बुजुर्ग के साथ बत्तमीजी से बात करे, ऐसा नहीं होता है। बच्चा सिर्फ भाषा की संरचना सीख के ही नहीं आता। वो भाषा के समाज में इस्तेमाल करने की जितने नियम हैं, जो नियमबद्ध हैं, वह सब भी सीखकर के आता है। जो भाषा की संपूर्ण विविधता है उसको साथ लेकर बच्चा आता है। वह इन्हें पहले से ही लेकर आता है और इसमें विविधता भी शामिल है। बहुत सारे मामलों में विविधता अलग-अलग भाषाओं में नजर आती है। ये काफी जटिल सवाल है। किसको आप हिन्दी कहेंगे या उदाहरण के लिए ये सवाल कि मीरा कौनसी भाषा की कवियत्री थी? आप क्या कहोगे राजस्थानी? हिन्दी वाले कहते हैं हमारी है। मेवाडी कहते हैं कि हमारी है और मराठी कहते हैं कि हमारी है। आप कहां कहेंगे कि पंजाबी खत्म हो गई और हरियाणवी शुरू हो गई या पंजाबी खत्म हो गई और पहाड़ी शुरू हो गई। ये तो ठीक है कि आपको यहां पहाड़ी अलग दिखाई देगी और यहां पंजाबी। दो किनारों के बीच में आपको पहाड़ी और पंजाबी काफी अलग-अलग दिखाई देगी। लेकिन यह एक व्यक्ति पर या एक समाज विशेष पर निर्भर करता है कि किसको क्या नाम दिया जाए। उसमें भाषा का भी लेना-देना नहीं है। तो आप बच्चे को बहुभाषी कहेंगे या नहीं कहेंगे ये आपकी भाषा की परिभाषा पर निर्भर करेगा और उस सामाजिक सत्ता और सामाजिक संरचना पर निर्भर करता है जिसके कि आप एक सदस्य हैं। ये आपको स्वतंत्रता नहीं है कि आप किसको हिन्दी कहते हैं। ये आपको ऐसा बताया गया है तो आप लोग इसे हिन्दी कहना शुरू करते हैं। आपके पास कोई तर्क नहीं है उसके लिए कि इसे हिन्दी कहें।

प्रश्न : हमारे यहां एक समस्या अंग्रेजी शिक्षण की भी है। बच्चों को कैसे अंग्रेजी सिखाई जाए? बच्चों को अंग्रेजी सिखाना मुश्किल भरा काम होता है। हमारे यहां ग्रामीण समाजों में या शहरों में भी अंग्रेजी का परिवेश नहीं है। इस वजह से बच्चों को अंग्रेजी सिखाने में एक बड़ी समस्या रहती है। आपने यह तो कहा है कि बच्चा बहुत-सी बातें सीख सकता है यदि परिवेश उसको मिले तो, लेकिन वो परिवेश समाज में तो उसे मिल नहीं रहा है।

उत्तरः इसमें दो-तीन बातें हैं। आपने और भी जगह वो सवाल उठाए हैं। पहली बात तो यह कि काफी शोधों ने यह करके दिखा दिया है कि बच्चों में जितनी अधिक बहुभाषिता होती है उतनी ही सीखने की क्षमता अधिक होगी और उतना ही अच्छा सीखना अन्य विषयों में भी होगा। ये अब काफी माना जाने लगा है जो कि पहले की मान्यताओं से ठीक उलटा है। 1930 से 1960 तक ऐसा माना जाता था कि बच्चे को एक भाषा ही सीखानी चाहिए। अधिक भाषाएं सीखने से बच्चों का सीखना नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। इसके बहुत राजनीतिक पक्ष भी हैं, सामाजिक पक्ष भी हैं, लेकिन यह तो नहीं है, यह तो बिल्कुल साफ बात है, कि बहुभाषी बच्चे सीखने में पिछड़ जाते हैं या वेबकूफ होते हैं। ये तो अब संसार भर में सिद्ध हो गया है कि जो बेहतरीन इंजीनियर, डॉक्टर और वैज्ञानिक दुनिया भर में गए हैं वो हिन्दुस्तानी हैं। और भी हैं, चीनी हैं या जापानी हैं। वो दो-दो, तीन-तीन, चार-चार भाषाएं बोलते हैं, जानते हैं। अतः बहुभाषिता और ज्ञान के विकास में कोई विरोधाभास नहीं है बल्कि उनमें एक बहुत बड़ा रिश्ता है।

प्रश्नः बहुभाषिता एवं ज्ञान के विकास में यह रिश्ता कैसे बनता है? क्या यह कारण है कि अंग्रेजी आदि भाषाएं पुरानी हैं इसलिए उनमें अभिव्यक्ति सूक्ष्म और सटीक स्तर पर संभव है?

उत्तरः देखिए ये बिल्कुल उस दुराग्रह का असर है कि सत्ताधरियों की भाषा कौनसी है? मैं आपकी बात समझ रहा हूं। मैं ये कह रहा हूं कि हमारे भाषाविद् अशोक के.वी. सर है या डॉक्टर राजेन्द्र सिंह या कृष्ण कुमार हैं, ऐसे आपको मैं बीसियों नाम गिना सकता हूं। अब कृष्ण कुमार जितने सटीक तरीके से अंग्रेजी में बात कहते हैं उतने ही सटीक तरीके से हिन्दी में कहते हैं। आप कैसे इस बात का निर्णय लेंगे? यह बिल्कुल वही बात है कि यदि आप मैथिली में फिजिक्स नहीं पढ़ा पा रहे हैं इसका मतलब नहीं है कि मैथिली में समस्या है। इसका मतलब है कि आपको फिजिक्स नहीं आती। यहां इसका मतलब है कि आपको हिन्दी ठीक से नहीं आती है। मैं तो यह कहूंगा कि हिन्दी तो ठीक से आती ही नहीं है और आपने हिन्दी का अच्छा साहित्य नहीं पढ़ा, हिन्दी के सौंदर्य को नहीं पहचाना। भाषा का सौंदर्य से भी गहरा रिश्ता है। उसको नहीं भूलना चाहिए, संगीत से बहुत गहरा रिश्ता है। क्योंकि विद्वानों का एक समूह तो यह मानता है कि ऐसा नहीं हैं कि हम शब्दों को संगीत में भर देते हैं। ऐसा नहीं है, हम संगीत में शब्दों को भर देते हैं। इसलिए जो संगीत में गाने पहले थोड़े लिखे जाते हैं। पहले तो धुनें बनाई जाती हैं। एक बार धुन बन गई तो उसमें शब्द भर दो। तो संगीत और भाषा का बहुत गहरा रिश्ता माने जाने लगा है। तो अंग्रेजी का सवाल तो आपका बिल्कुल वाजिब सवाल है लेकिन मुझे लगता है उसके संदर्भ में तीन बातें याद रखनी चाहिए।

अंग्रेजी सीखने-सिखाने को लेकर हमारे देश का जो संदर्भ है, खासकर के ग्रामीण और पिछड़े हुए वर्गों की बात है, बाकी जगह तो इतनी समस्या नहीं है। बाकी शहरों और अच्छे स्कूलों में लोग अच्छी खासी अंग्रेजी बोलते हैं और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों और भारतीय स्तरों में कोई फर्क नहीं है और न ही कोई अंग्रेजी में फर्क है। लेकिन जहां तक पिछड़े हुए वर्गों की बात है कि जैसे उनको मानकीकृत भाषा से दूर रख के उनका शोषण करते हैं, ठीक उसी तरह से मुझे लगता है कि आप उनको अंग्रेजी से दूर रखकर भी उनका शोषण करते हैं। क्योंकि मैं मानकर चल रहा हूं कि इससे उनकी भाषा भी समृद्ध होगी और अंग्रेजी का विकास बहुभाषिता के रहते होगा, बहुभाषिता की कीमत पर नहीं होगा। बहुभाषिता को नष्ट करके जो अंग्रेजी पनपेगी वो हमको नहीं चाहिए। उससे हमको बहुत नुकसान हैं। हमें ऐसी अंग्रेजी चाहिए जो बहुभाषिता के साथ पनपे और ये बहुत ही साफ है, मेरे ही साथ पचासों नहीं हजारों दोस्तों के साथ हजारों मलयाली, पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, हरियाणवी ये सब साथ-साथ पढ़ सकते हैं। तो बाकी बच्चे क्यों नहीं पढ़ सकते। मुझे लगता है कि इसमें सबसे मुख्य सवाल साधनों का है कि आपके किसी भी स्कूल में, जो पिछड़े हुए वर्ग के और सरकारी स्कूल हैं, जहां हमारे करोड़ों बच्चे जाते हैं। उनमें शायद एक प्रतिशत अध्यापक भी ऐसे नहीं होंगे जिनको अंग्रेजी खुद आती हो। वो कैसे पढ़ाएंगे अंग्रेजी। लेकिन ये चला हुआ है कि साहब नहीं वो तो पढ़ा देंगे। आपके पास कोई भी साधन नहीं हैं, न अच्छे शिक्षक हैं और न ही अच्छी किताबें हैं। इन सबके न रहते आप ये सवाल फिर भी पूछते रहते हैं। फिजिक्स में तो यह सवाल कोई नहीं पूछता। गणित में तो यह सवाल कोई नहीं पूछता। लेकिन भाषा में लोगों को लगता है कि जिसे खुद अंग्रेजी नहीं आती वह शिक्षक किसी न किसी तरह से काम कर ही लेगा। कुछ न कुछ हो ही जाएगा। अरे! कुछ न कुछ कैसे हो जाएगा? कुछ तो भाषा की समझ होनी ही चाहिए, भाषा में तो उसकी पकड़ पूरी तरह से होनी चाहिए न। एक तो यह सबसे बड़ी समस्या है। दूसरी बात यह है कि लोग कभी भी यह कोशिश नहीं करते कि ऐसे संदर्भ बनाए जाएं। जहां थोड़ी बहुत अंग्रेजी आती है और जहां अंग्रेजी की किताब हैं वहां भी एक बहुत ही नासमझ तरीका पढ़ने-पढ़ाने का यह रहता है कि भईया ये 25-30-40 मिनट हैं, इसमें जितनी अंग्रेजी थोपनी है, इसके गले से कड़वी दवाई की तरह नीचे उतार दो। कुछ तो टिकेगा बच्चे के दिमाग में। इससे बड़ी वेबकूफी कोई नहीं हो सकती क्योंकि इससे बच्चे को कुछ समझ ही नहीं आता और उसके दिमाग में कुछ नहीं टिकता। इसीलिए 12-12 साल अंग्रेजी पढ़ाने के बाद भी जहां अंग्रेजी की किताबें भी हैं और अंग्रेजी के अध्यापक भी हैं, फिर भी बच्चों को अंग्रेजी नहीं आती। क्योंकि यदि दृष्टि यह है तो मैं फिर वही कहूंगा कि दृष्टि बहुभाषिता आधारित होनी चाहिए, बच्चों की भाषाओं का प्रयोग होना चाहिए। उनका आदर होना चाहिए और उन्हीं के माध्यम से, खाली अनुवाद ही नहीं और भी बहुत तरीके हैं, उसको आधार बनाकर अंग्रेजी का शिक्षण होना चाहिए।

प्रश्नः बहुभाषिता एवं उपलब्धि स्तर का क्या रिश्ता है? क्योंकि यह बात भाषा शिक्षण के फोकस समूह के पोजिशन पेपर में, हालांकि उनका हिन्दी अनुवाद अच्छा नहीं है, भी बहुत कही गई है कि यदि बच्चे को आरम्भ में मातृभाषा में शिक्षण करवाया जाए तो उसके उपलब्धि स्तर, ज्ञान लब्धि पर कोई फर्क नहीं पड़ता कि, वह अंग्रेजी में पढ़ने वालों से पीछे रह जाएगा।

उत्तरः पीछे नहीं वो आगे हो जाएगा। यह बिल्कुल निश्चित बात है कि अगर आपकी एक भाषा में पकड़ अच्छी हो गई है, अच्छी होने का एक मतलब यह होता है कि एक तो हम लोग बातचीत कर रहे हैं अब हम लोग एक अलग स्तर पर बातचीत कर रहे हैं, कोई दूसरा आदमी बैठा हो तो वो बोर होकर चल देगा। लेकिन मान लीजिए आपकी हिन्दी में ऐसी पकड़ है कि आप हजारी प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, निराला, निर्मल वर्मा या आप अन्यथा या शिक्षा विमर्श जैसी पत्रिका को पढ़ सकते हैं। मतलब आप खाली हिन्दी फिल्में नहीं देखते। आप नये-नये लेखकों को पढ़ते हैं। यदि आप में हिन्दी पढ़ने, लिखने एवं समझने की काबिलियत है तो आपकी अंग्रेजी में पकड़ बहुत जल्दी बन जाएगी। अगर पहली शर्त पूरी हो जाए कि आपको पढ़ाने वाले और सामग्री ठीक मिल जाए और आपको एक्सपोजर ठीक मिल जाए। इसके लिए शिक्षक प्रशिक्षण बहुत जरूरी हिस्सा है। ऐसा नहीं है कि लोगों को हिन्दी अच्छी आती है लेकिन हिन्दी में गुजारा फिर भी चल जाता है। कितने ही बच्चे स्कूलों से निकलते हैं जिनको हिन्दी आती है लेकिन यदि आप उनको जनसत्ता का लेख दे दें तो मुझे नहीं लगता की कोई पढ़ पाएगा या समझ के पढ़ पाएगा। तो यह कहना कि बच्चों को अंग्रेजी नहीं आती है बेवकूफी है और सवाल तो ये भी है कि हिन्दी भी कहां आती है! जब तक हम पढ़ाने के तरीके नहीं सुधारेंगे और ये सब बातें जो हमने कहीं हैं वो नहीं समझेंगे तब तक कुछ नहीं होगा।

देखिए, बहुभाषिता और उपलब्धि स्तर में कोई सीधा संबंध नहीं है। अब ये ऐसा ही सवाल है कि यदि बच्चे को अच्छा खाना मिलता है तो उसका पढ़ाई-लिखाई से क्या सबंध? मैं कहूंगा हां कोई संबंध नहीं है लेकिन अगर वो भूखा कक्षा में बैठा होगा तो उसकी समझ में कुछ नहीं आएगा। ये बात जो मैंने आपको पहले बताने की कोशिश की थी, जिसे हम संज्ञानात्मक लचीलापन कहते हैं। ऐसे अनुभव लोगों ने किए कि भई पेपर क्लिप के ऊपर निबंध लिखने को दे दिया। दो भाषी बच्चों को भी दिया और एक भाषी बच्चों को भी दिया, जिनको माना जाता है कि जिनका एक्सपोजर इतना ज्यादा नहीं था, तो यह पाया गया कि सब बच्चों ने अच्छा लिखा। लेकिन बहुभाषी बच्चों ने बहुत ज्यादा अच्छा लिखा। क्योंकि उनके अनुभव और अनुभवों की दुनिया व्यापक होती है। भई जितनी भाषाओं से आप परिचित हों उतनी संस्कृतियों से भी आप परिचित होंगे। उतने सामाजिक संदर्भों से भी परिचित होंगे। तो नये-नये शब्दों, उतनी शब्द संपदा भी आपके पास होगी और शब्दों को एक देश से दूसरे में जाने के लिए पासपोर्ट नहीं चाहिए होता हैं। मुझे तो अमेरिका या इंग्लैण्ड के लिए या जर्मनी जाने के लिए या कहीं और जाने के लिए पासपोर्ट की जरूरत पड़ेगी। लेकिन मेरी भाषा को तो जरूरत नहीं है न, मेरी भाषा मेरे साथ चली जाएगी और क्या करेगी अंग्रेजी, जर्मन और फ्रैंच में हिन्दी के पांच-सात शब्द छोड़ आएगी और अपनी हिन्दी में जर्मन के पांच-सात शब्द इसी तरह से ले आएगी। अब सब लोग कहेंगे कि पार्टी या बस या रिक्शा हिन्दी के शब्द हैं। किसी को ये कहो कि पार्टी तो पुर्तगाली से आया है, रिक्शा चायनीज-जापानीज से आया है, इसे लोग भूल जाते हैं। अगर आप यह कह दो कि भई मैं स्टूडेन्ट्स यूनियन के ऑफिस जा रहा हूं तो हो सकता है कि कोई आपसे लड़ने लग जाए। आपसे यह कहने लग जाए कि आप यह क्यों नहीं कहते हैं कि आप छात्र संघ कार्यालय जा रहे हैं। झगड़ा करते हैं लोग इस तरह के मुददों पर, आए दिन झगड़े होते हैं लेकिन मुझे लगता है कि इनकी जरूरत नहीं है। ये बेमायने झगड़े हैं। एक तरीके में आप संस्कृत से उधार ले रहे हैं, दूसरे में आप अंग्रेजी से ले रहे हैं, उधार ही ले रहे हो न।

प्रश्नः आमतौर पर यह माना जाता है कि भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। यदि भाषा के कार्य को यहीं तक सीमित कर दिया जाए तो इसका शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

उत्तरः भाषा में जो एक सृजनात्मक पक्ष है उसको तो हम बिल्कुल ही मार डालते हैं। पहले तो बच्चे की भाषा को मार देते हैं। फिर उसके सृजनात्मक पक्षों को साथ ही मार देते हैं। उसका हम इतना तिरस्कार और निरादर करते हैं कि बच्चे स्कूल छोड़कर भाग जाते हैं और हम उसको जो सिखाते भी हैं वो ही इतना नीरस होता है कि कक्षा में दो-चार कहानियां, दो-चार कविताएं हो जाएंगी। भाषा का क्षेत्र इतना विस्तृत है और साहित्य का क्षेत्र इतना विकसित है, कि उसमें अलग-अलग तरह से अभिव्यक्तियां होती हैं। हमें तो यही उम्मीद होती है कि एक प्रार्थना जरूर होनी चाहिए, कि एक झांसी की रानी जरूर होनी चाहिए, कि एक प्रेमचन्द की कहानी जरूर होनी चाहिए। बस। ये इस तरह से पढ़ाते हैं और कभी पाठ्यपुस्तक से बाहर नहीं झांकते। आप सोच सकते हैं कि एक अध्यापक, उसको तो अध्यापक कहलाने का हक ही नहीं है, वो 25-30 साल नौकरी करता है और 25-30 साल एक ही किताब पढ़ाता रहता है। एक ही कहानी, वो ही पढ़ाता रहता है बार-बार। इससे ज्यादा बोरिंग काम क्या हो सकता है ?

प्रश्नः आमतौर पर स्कूलों में बच्चों को भाषा पढ़ाने का जो चलन है कि बच्चा स्कूल में गया नहीं कि ए, बी, सी, डी और अ, आ, इ, ई सिखाना शुरू कर देते हैं। भाषा सिखाने की शुरूआत लिपि सिखाने से होती है। बच्चे के साथ बातचीत या कथा-कहानियां कहना या कविताएं सुनाना या नाटक करवाने पर आमतौर पर काम नहीं होता। इससे बच्चे के भाषा सीखने पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

उत्तरः इससे बड़ी नासमझी की बात तो कोई हो ही नहीं सकती। पर आमतौर पर होता यही है। इसलिए नहीं सीखते हैं बच्चे भाषा, इसलिए नहीं सीख पाते। हम लोगों को हैरानी होती है, अगर आप मेरे से पूछें तो, हैरानी इस बात पर नहीं होनी चाहिए कि बच्चे भाषाएं नहीं सीख पाते और साहित्य नहीं पढ़ पाते। हमें हैरानी इस बात पर होनी चाहिए कि जो थोड़ी बहुत भाषा वे सीख जाते हैं और पढ़ लेते हैं वो कैसे सीख जाते हैं। क्योंकि शिक्षा व्यवस्था तो हर तरह से पूरी कोशिश करती है कि कोई कुछ न सीख पाए। देखिए, जो बच्चा तीन साल की उम्र में आपके सामने पूरी वर्ण व्यवस्था और उसके नियमों को व्यवस्थित तरीके से सीखकर आया है उसको ए, बी, सी, डी, क, ख, ग सिखा रहे हैं। अरे वो क, ख खुद निकाल लेगा। जब तीन-चार बार गधा उसके सामने लिखा हुआ आएगा तो ग और ध को वो अलग कर लेगा। तीन-चार बार उसके सामने माला, बाला और नाला अलग-अलग संदर्भों में आएगा तो वो म, ब, न अलग-अलग कर लेगा। उनकी आकृतियों को अलग कर लेगा। ध्वनियां तो दिखती भी नहीं हैं जिनके फर्क को वह समझ लेता है, आकृतियां तो दिखती हैं। लेकिन हम उन्हें ए, बी, सी, डी सिखा रहे हैं बेवकूफों की तरह। अब किसी अध्यापक को यह पता नहीं होगा कि ए की अपनी कोई ध्वनि नहीं होती हैं। ई की ध्वनि के कम से कम 20 समूह होंगे उस ध्वनि में जिसका कि लिपि से कोई रिश्ता ही नहीं है। लेकिन फिर भी वो पढ़ा रहे हैं।

प्रश्नः आपने कहा है कि भाषा का एक सौन्दर्यात्मक पक्ष भी होता है। हमारे स्कूलों में उसे मार डालते हैं। ऐसा क्या होना चाहिए स्कूलों में कि उससे बच्चों में भाषायी सौन्दर्य का विकास हो ?

उत्तरः देखिए, वास्तविक सौंदर्य जिससे कि वो परिचित हैं उसको तो हम पहले ही मार देते हैं। जो बच्चे तीन वर्ष की उम्र से बहुभाषी हैं होते हैं, रोहित कहता है नहीं-नहीं हमारे यहां तो एक भाषी होते हैं, सभी बच्चे एक ही भाषा बोलते हैं। चलो मैं मानता लेता हूं, लेकिन ये मेरा बिल्कुल सिद्ध किया हुआ तथ्य है कि हर पांचवे गांव में कुछ कहानियां कविताएं तो एक जैसी होती हैं, लेकिन कुछ अलग-अलग भी होती हैं। जरूर अलग-अलग होती हैं। उनको बोलने का तरीका, उनको गाने का तरीका करने का तरीका, वो है सौन्दर्य। वहां की कहावतें, हर पांचवे-दसवें गांव में कहावत का रूप बदल जाता है। अरे! दस-बीस किलोमीटर पर तो घीया और कद्दू का अलग-अलग बटवारा हो जाता है कि आप कोला किसे कहेंगे, घीया किसको कहेंगे, तोरई किसे कहेंगे और ककड़ी किसे। तो कहानी, कविता, लोक संगीत और लोक नृत्य में ये बदलाव क्यों नहीं होगा। दो-तीन बातें हैं- बहुभाषिता, बच्चे की अवाजों के लिए जगह, उनका कक्षा में सृजनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन और नए-नए संदर्भ साहित्य एवं कला के बच्चों के सामने प्रस्तुत करें तो कोई कारण ही नहीं है कि बच्चों की भाषा की क्षमता समृद्ध न हो। लेकिन इसमें से हम करते कुछ नहीं है।

प्रश्नः ऐसा अनुभव है कि छोटे बच्चे, जो मेरे आसपास हैं जिनको मैं बड़े होते हुए देख रहा हूं, उनके संदर्भ में एक बात दिलचस्प है कि यदि उनके माता-पिता थोड़े समझदार हैं और जो बच्चों को समझना चाहते हैं, उनके साथ संवाद करते हैं, उनको कहानी सुनाते हैं। यदि उन्हें एक्सपोजर मिलता है तो उनकी भाषा हमारी उस अवस्था की भाषा से बहुत समृद्ध है।

उत्तरः इसका आपको दस्तावेजीकरण करना चाहिए। अगर आपने कहीं ऐसा प्रयोग किया है और अगर थोड़ा-सा भी मौका दें, थोड़ी-सी भी बच्चों को जगह दें क्योंकि ये बच्चों की खिलने वाली उम्र होती है। क्योंकि एक दिन में बच्चे दिन में सौ-पचास शब्द सीख जाते हैं और हमसे एक नहीं सीखा जाता।

प्रश्नः स्कूलों में भाषा सिखाने की शुरूआत सरल शब्दों से करते हैं और फिर कठिन शब्दों एवं जटिल वाक्यों की ओर बढ़ते हैं। क्रमशः सरल से कठिन तरफ ले जाया जाता है। माना यह जाता है कि बच्चे की समझ के स्तर के साथ ही उसको पढ़ाना चाहिए और शिक्षक के लिए ये चुनौती भी होती है कि बच्चे के स्तर के अनुसार काम करे। क्या बच्चे को भाषा सिखाने की प्रक्रिया में भाषा को स्तरीकृत किया जा सकता है?

उत्तरः मेरा तो ये मानना है कि किसी भी विषय के बारे में, गणित के बारे में सबसे ज्यादा यह कहा जाता है कि उसकी अवधारणाएं क्रमिक व्यवस्था में होती हैं। यदि एक बार आपको बात समझ में आने लग जाए, एक बार आपको गणित की भाषा समझने में आने लग जाए और गणित के बुनियादी सिद्धान्त समझ में आने लग जाएं, इसी तरह से भौतिक

विज्ञान की बात है। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञान में भी एक बार पढ़ना, पढ़कर समझना और विश्लेषणात्मक क्षमता आ जाए, इसीलिए मैं बार-बार वो बात कहता हूं हमारी जो विश्लेषणात्मक क्षमताएं हैं उनको हम प्रखर करने में लगे रहें। शिक्षा का यही एक उद्देश्य होना चाहिए। बस। देखिए, मैं एक क्रम बना सकता हूं कि आप पहले अपने घर का इतिहास देखिए, फिर अपने मोहल्ले का, फिर अपने गांव का, फिर अपने शहर का, फिर जिले का, फिर अपने देश का और फिर आप आसपास के देशों का इतिहास देखिए, मुझे लगता है कि यह बहुत ही बेवकूफी की बात है। इस तरह का एक रेखीय एवं एक दिशा में चलने वाला क्रम बहुत ही बेवकूफी की बात है। क्योंकि मैं कोई छोटी-सी घटना से लेकर इतिहास का आरम्भ कर सकता हूं जो कि विश्व स्तर की हो और वह बच्चों को तो समझ में आ सकती है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे आप बैठे हैं तो मुझे आपके चेहरे को देखकर बराबर यह पता लग रहा है कि आपको यह बात समझ में आ रही है या नहीं आ रही है। मुझे किसी डॉक्टर के पास जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। क्योंकि मुझे थोड़ा-सा भी लगता है कि यह बात आपको जटिल लग रही है तो मैं उसको और तरह से, दूसरे ढंग से कहने की कोशिश करूंगा। तो मुझे लगता है कि हर अध्यापक को यह पता होता है कि उसके बच्चों को क्या समझ आ रहा है और क्या समझ नहीं आ रहा है। उसमें सरल से कठिन की ओर ले जाना मुझे तो ठीक नहीं लगता। मैं तो कह रहा हूं कि मैं तो इतिहास में भी यह मानता हूं कि मुझे जिस दिन पढ़ना आ जाएगा, उस दिन मैं पहले फ्रांसिसी क्रान्ति पढूंगा, उसके बाद भारत का स्वाधीनता संग्राम पढूंगा, मर्जी है मेरी। उसके बाद हिटलर के बारे में पढूंगा, इसी तरह से मैं गणित व भाषा के बारे में कह सकता हूं। ये हो सकता है कि सत्यजीत रे या रवीन्द्रनाथ टैगोर की कोई छोटी-सी कविता हो, जो कि बहुत ही सरस है, बच्चों को बहुत अच्छी लगे चाहे उसमें थोड़ी जटिलता हो। लेकिन आपको वो पढ़ाने से, बच्चों की शक्ल देखने से, यह पता लग जाएगा कि यह उनके लिए सार्थक है या नहीं। तो मुझे लगता है कि ये जो प्रश्न आपने पूछा है इसको सरल से कठिन की ओर परिभाषित नहीं करना चाहिए। इसकी सार्थकता की दृष्टि से और बच्चों को समझ में आने की दृष्टि से और उनके जीवन से क्या संबंध हो सकता है, उसकी दृष्टि से परिभाषित करना चाहिए।

प्रश्नः क्या बच्चे के जीवन अनुभवों से जुड़ना आवश्यक नहीं है? हालांकि हर चीज पूरी तरह से बच्चों के जीवन अनुभवों से जुड़े यह जरूरी नहीं है क्योंकि नई चीज के बारे में जानने से जीवन अनुभव भी आगे बढ़ते हैं। लेकिन फिर भी यदि वह उसके अनुभव से पूरी तरह अछूती रहेगी तो वह उसे ग्राह्य कैसे होगी?

उत्तरः नहीं यह भी उसी तरह का बकवास है जिस तरह से सरल से कठिन का मामला है। मुझे लगता है होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम था वो इस बात की बहुत बड़ी मिसाल है क्योंकि लोगों का कहना यह था कि विज्ञान बच्चों के आसपास के क्षेत्र का जोड़कर पढ़ाएंगे। थोड़ा बहुत शुरू किया उस क्षेत्र से। उसके बाद जब दूसरे क्षेत्र में गए तो उन्हें लगा कि यहां क्या बदलाव कर सकते हैं? कुछ भी नहीं सिवाय दो चार शब्द के, कुछ नहीं बदल सकते, कुछ नहीं है बदलने के लिए। क्या बदलोगे आप।

प्रश्नः जैसे प्रेमचन्द की कफन कहानी है। क्या हम तीन चार साल के बच्चे को सुना सकते हैं? क्या बच्चे उसे ग्रहण कर सकते हैं?

उत्तरः ये तो अब करके देखने वाली बात है। कोई सरल जवाब मेरे पास नहीं है। एक तो हमारे यहां पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या और किताबें बनाने की पूरी प्रक्रिया है उसमें इस तरह की जगह ही नहीं होती है कि अध्यापक अपनी कक्षा में जाकर प्रयोग करे और वो देखे कि ये कविता चल जाएगी या नहीं चलेगी। इससे मैं कुछ कर सकता हूं, देखिए एक तो गट्स फीलिंग होती है। एक तो टीचर जो पढ़ा रहा होता है उसको पता होता है कि यार बच्चों को यह तो समझ में आ जाएगा या नहीं आएगा। ये तो निर्णय अध्यापक को ही मेरे ख्याल से लेना पड़ता है। इसी तरह से किताब में भी हमारे यहां एक रेखीय व्यवस्था होती है कि पहले दो पाठ करने हैं फिर तीसरा करना है। क्यों भई ? आप पांचवे पाठ से शुरू क्यों नहीं कर सकते? हमने खुशी-खुशी की किताब बनाई तो उसमें लिखा हुआ था कि आप इस किताब को कहीं से भी शुरू कर सकते हैं और ऐसी सुविधाएं होनी चाहिएं। जरूरी नहीं कि ऐसा ही हो। आप चाहें पहले से बीसवें पाठ तक क्रमशः काम करना चाहते हैं, ऐसा भी हो सकता है लेकिन यदि आपके ऐसे तरीके हैं कि आप बीसवें पाठ से शुरू करना चाहें तो ऐसी भी सुविधा होनी चाहिए। और आपको लगता है कि बच्चों के लिए सार्थक होगी तो हम वहां से शुरू कर सकते हैं और ये मानकर चलना कि बच्चों को भाषा का हर शब्द समझ में आ जाएगा, फिर तो उनके सीखने के लिए कुछ रह ही नहीं गया। वह तो नहीं आएगा। कोई न कोई शब्द, कोई न कोई संरचना, कोई न कोई रूपक, कोई न कोई मुहावरा ऐसा जरूर होगा जो समझ में न आए। नहीं तो वह सीखेगा क्या? उसका प्रयोग दो-चार बार हो जाएगा तो सीख जाएगा। मुझे लगता

है बचना चाहिए नीरसता से और एक रेखीय दृष्टि से। पढ़ाने के तरीके में आगे पीछे जाने वाली व्यवस्था होनी चाहिए।

प्रश्नः राष्ट्रीय फोकस ग्रुप के पोजीशन पेपर में आपने कहा है कि राष्ट्रीय एवं ग्लोबल शांति के लिए अल्पसंख्यकों की भाषा और संस्कृति के प्रति संवेदनशीलता होनी चाहिए। बच्चा जो पढ़ रहा है, बढ़ रहा है उसकी जड़ भाषा के माध्यम से संस्कृति से भी जुड़ रही होती हैं। आपने आचार्य के अध्ययन को उद्धृत करते हुए कहा है कि 26 प्रतिशत बच्चे इसलिए स्कूल छोड़ देते हैं क्योंकि उन्हें जो पढ़ाया जा रहा है उसमें उनकी सांस्कृतिक विषयवस्तु का अभाव होता है। मेरा सवाल है कि अस्मिता जो भाषा के माध्यम से और बचपन से बन रही है, उसका और बच्चे के सीखने का क्या संबंध है ?

उत्तरः देखिए, बच्चे के सीखने के लिए पहली शर्त तो यह है कि वह स्कूल में रहे। जब वह स्कूल ही छोड़कर चला जाएगा तो वो सीखेगा क्या? दूसरी बात यह है कि, हमारी मान्यताएं हैं जो मैं शुरू से ही आपसे कह रहा हूं, भई नई भाषाएं सीखनी हैं तो पुरानी भाषाओं को त्यागना पड़ेगा। ये हमारी मान्यता है कि बच्चे की भाषा को जब तक मारेंगे नहीं या बच्चे की संस्कृति को जब तक मारेंगे नहीं तब तक वह नई भाषा और नई संस्कृति नहीं सीखेगा और यही होना चाहिए। मैं कह रहा हूं कि इन मान्यताओं पर बहुत बड़े प्रश्नचिह्न लगाने की आवश्यकता है। इसलिए हम अल्पसंख्यक और अल्पसंख्यक भाषाओं की बात बार-बार कर रहे हैं। इस बात के हमारे पास बहुत प्रमाण हैं कि भाषाएं एक-दूसरे की संगति में पनपती हैं, मरती नहीं हैं। उन्हें हम लोग मारते हैं। हमारी शिक्षा के जो तौर तरीके हैं वो मारते हैं, उनका मरना लिखा हुआ नहीं है।

प्रश्नः सीखने का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तरः मैं यह कह रहा हूं कि जैसे-जैसे बच्चे की भाषा का तिरस्कार होता है जैसा कि आपने कहा, उसके साथ-साथ उसकी संस्कृति और तौर तरीकों पर एक तरह से धब्बा-सा लग जाता है और वो धब्बा उसकी मानसिकता को बिल्कुल छलनी कर देता है। तो सीखने का इसका बहुत सीधा संबंध है। इसलिए बहुभाषिता का विचार मैंने आपके सामने रखा है। और इसलिए कहा कि पूरी शिक्षा प्रणाली का केन्द्र बहुभाषिता होना चाहिए। ये उस अस्मिता के सवाल से ही जुड़ा हुआ है, उसकी पहचान के सवाल से जुड़ा हुआ है। खाली उसकी भाषा से नहीं जुड़ा हुआ है क्योंकि जब वो ऐसा शब्द कक्षा में लाता है जिसपर कि बाकी लोग हंसते हैं या मजाक उड़ाते हैं तो उस शब्द को तो कक्षा के विश्लेषण का हिस्सा होना चाहिए। ये एक अध्यापक को समझ होनी चाहिए कि, मान लीजिए एक बच्चा जो अच्छे परिवार से आया है कहता है स्टेशन और दूसरा बच्चा कहता है सटेशन और तीसरा बच्चा कहता है टेशन। अब उस टेशन बोलने वाले पर बच्चे बाकी बच्चे हंसेंगे। मुझे लगता है यहां पर अध्यापक की बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है कि वो कक्षा में यह सिद्ध करके दिखला दे कि भईया ये तुम्हारे से किसी तरह से कम नहीं है। और जो भाषा ये बोल रहा है यह नियम रहित नहीं है और यह अच्छा बोलना सीख जाएगा जैसा तुम बोल रहे हो। इस तरह की जगह और इस तरह के मौके कक्षा में पैदा करना एक शिक्षक की जिम्मेदारी है। जब तक बहुभाषिता के प्रति संवेदनशील अध्यापक, शिक्षा प्रणाली और हमारा समाज नहीं होगा तब तक समस्या है। ◆

शिशु

शिशु लोरी के शब्द नहीं
संगीत समझता है

अभी वह अर्थ समझता है
बाद में सीखेगा भाषा।

❑ **नरेश सक्सेना**

'समुद्र पर हो रही है बारिश' संग्रह से साभार